चाइनिज बॉल

प्रफुल्ल कोलख्यान

शनिवार का दिन। आधे दिन के बाद छुट्टी। गर्मी के मौसम में दुपहरिया को बाहर निकलना बड़ा कष्टकर होता है। बीस साल पहले की बात और थी। तब और ही उत्साह था। और ही उमंग थी। न धूप डराती थी। न बरसात ही रोक पाती थी। बाँग्ला या हिंदी का कोई न कोई कार्यक्रम रहता ही था। कार्यक्रम न हो तो राष्ट्रीय पुस्तकालय ही अपना ठिकाना हुआ करता था। वहाँ तब के युवा नूर मुहममद नूर, मनोज दूबे, नरेन, सिराज खान बातिश, अवधेश मोहन गुप्त, लखबीर सिंह निर्दोष, कुशेश्वर, विजय शर्मा, जीतेंद्र धीर, शिवनाथ पांडे, सोमदत्त, आशुतोष सिंह मुन्ना, असीम कुमार आँसू, सुरेंद्र दीप आदि कई मित्र स्थाई रूप से आते थे। राष्ट्रीय पुस्तकालय की सीढ़ियों पर जम जाती थी 'सीढ़ी गोष्ठी'। सभी कुछ न कुछ लिखते थे। सभी सुनाते थे। सभी पर बात होती थी। अलखनारायण और शंभुनाथ जी भी बीच-बीच में आ जाया करते थे। अलखनारायण तो अचानक हमारे बीच से उठ ही गये। अलखनारायण राजेंद्र छात्रनिवास में ही रहा करते थे। अलखनरायण के रहते कोलकाता प्रवास के दौरान राजेंद्र छात्रनिवास ही बाबा नागार्जुन का प्रमुख ठिकाना हुआ करता था। उन्होंने अलखनारायण की आलोचना पुस्तक के प्रकाशन के निमित्त शंभुनाथ जी को कुछ राशि भी सौंपी थी। शंभुनाथ जी शुरू से ही काफी सक्रिय भी रहे हैं। राष्ट्रीय पुस्तकालय के हिंदी विभाग को मुख्य भवन से हटाये जाने के विरोध में शंभुनाथ जी ने तो अच्छी खासी मुहिम ही चला दी थी। आखिर वह अस्मिता का सवाल था!

हिंदी प्रदेशों से आये दो-चार शोध छात्र भी सीढ़ी गोष्ठी में शरीक हो लेते थे। शाम को टहलने के लिए निकले कुछ अधवयस लोग भी उस सीढ़ी गोष्ठी में शामिल हो जाते थे। इनमें से अधिकतर उस समय उच्च पदों पर काम कर रहे होते थे और अपने जीवन में कभी न कभी साहित्य की किसी-न-किसी विधा में हाथ जरूर आजमा चुके होते थे। कुछ अब भी यदा-कदा लिख लाते थे। वे भी सुनाते थे। वहाँ होनेवाली चर्चा बिल्कुल 'राष्ट्रीय स्तर' की होती थी! इसमें सती कांड से लेकर मकबूल फिदा हुसैन की पेंटिग्स, नामवर सिंह की आलोचना से लेकर अशोक बाजपेयी के आयोजनों पर जमकर चर्चा होती थी। उस समय की हर बड़ी घटना सीढ़ी गोष्ठी का विषय हुआ करती थी। हम असंतुष्ट, संतुष्ट और आलोड़ित होकर, कई बार उत्तेजित होकर भी वापस आते थे। कुछ लोग गाते अच्छा थे तो कुछ बजाते अच्छा थे। वहीं बिना नाम के नुक्कड़ नाटक की मंडली भी तैयार हो गई। कई नाटक भी खेले गये। प्रेमचंद, अब्दुल बिस्मिल्लाह, असगर वजाहत जैसे

लेखकों के लिखे को आधार बनाकर खेले गये वे नुक्कड़ नाटक हमारी उपलब्धि होती थी! वे दिन और थे। तब तो गुमान भी नहीं था कि ये दिन हवा होनेवाले हैं। वे दिन हवा हो गये। वह उत्साह, वह उमंग अब कहाँ! सब कुछ को बदल देने के प्रयास में वैचारिक रूप से शामिल होने का वह माद्दा अब कहाँ !

24 जून 2006 शनिवार का दिन। अरुणकमल भारतीय भाषा परिषद आनेवाले थे। भरतीय भाषा परिषद ने एक कार्यक्रम भी शाम को रखा था। ढेर सारे अगर-मगर से जूझते हुए वहाँ पहुँचने पर पता चला फ्लाइट की गड़बड़ी के कारण अरुणकमल कार्यक्रम में नहीं पहुँच पायेंगे। बहरहाल कार्यक्रम तो होना ही था। कार्यक्रम हुआ भी। ओड़िया के कवि विष्णु महापात्र ने कई अच्छी कविताएँ सुनाई। विश्व स्तर की! शनिवर की रात होने और फुटबॉल के विश्व कप के टीवी प्रसारण के कारण ट्रेन में कम ही यात्री थे। फेरीवाले अपना सामान लिये डिब्बा में गुहार लगा रहे थे। तभी एक बालक की आवाज आई--- आमि एकटा चाइनिज बॉल। बाँग्ला में कही गई उसकी बात का आशय यह कि वह ‘चाइनिज बॉल’ है। उसके बाद उसने चलती ट्रेन के छोटे से डिब्बे में अपने शरीर को तोड़ने-मरोड़ने के एक से एक करतब दिखाये। ऐसे करतब जिसे देखकर कोई भी अचरज में पड़ जाये। इसी संदर्भ में बुधिया को भी याद किया जा सकता है। यदि ठीक-ठाक परवरिश हो तो बहुत सारी प्रतिभाओं को नष्ट होने से बचाया जा सकता है। लेकिन यह ठीक से परवरिश ही तो मुश्किल काम है। कुछ लोग सिर्फ सफलता का आनंद लेते हैं। कुछ थोड़े लोग सफलता के लिए अनुकूल परिस्थिति बनाने की भी चिंता करते हैं।

मुड़कर देखता हूँ तो यही लगता है कि 1991 में लागू नई आर्थिक नीति और 1992 में अयोध्या में बाबरी मस्जिद को गिरा दिये जाने के बाद उठी बहस की आँच हम सम्हाल नहीं पाये। एक बार सीढ़ी गोष्ठी की रीढ़ टूटी तो टूट ही गई, इसे फिर से उठाया नहीं जा सका। राष्ट्रीय पुस्तकालय अब भी आबाद है, अब भी सीढ़ियाँ कायम हैं। सिर्फ हमारी जमघट नहीं है। दिमाग में गुजरे हुए समय की कई यादें उमड़-घुमड़कर आती-जाती रहती है।

भूमंडलीकरण के दौर में ‘राष्ट्रवाद’ के नये सिरे से प्रासंगिक होने के कारण या पता नहीं दिमाग के में जमे किन निष्कर्षों के कारण उस नौजवान का करतब जितना अचरज में डाल गया, उतना ही उसका खुद को चाइनिज बॉल बताना अखर गया। वह खुद को ‘भारतीय बॉल’ या कम-से-कम ‘बाँग्ला बॉल’ ही कह सकता था। लेकिन उसका ही क्या दोष! हम भी तो प्रेमचंद को भारत का गोर्की कहते थे! हम में से भी तो कई गोर्की, काफ्का, कामू , ब्रेख्त और न जाने क्या-क्या होना चाहते थे। आज भी तो हमारे

जीवन को प्रभावित करने की क्षमता रखनेवाले लोग हमारे शहर को कभी लंदन, कभी शंघाई तो कभी पेरिस बनाना चाहते हैं। मैं देर तक कल्पना करता रहा कि आज अगर 'सीढ़ी गोष्ठी' जिंदा रहती तो चाइनिज बॉल के नजरिये पर कौन किस तरह से अपनी बात रखता। आज सीढ़ी गोष्ठी नहीं है, बस उसकी याद है। यादों के हवाले से कल्पना करने का खुला अधिकार पत्र है। अपनी कल्पना में मैं कई बार इस खतरनाक निष्कर्ष पर पहुँचते-पहुँचते बचा हूँ कि कोई कुछ नहीं बोलता, शायद सभी खामोश रह जाते। कभी-कभी यह भी लगता है कि सीढ़ी गोष्ठी इस निष्कर्ष पर भी पहुँच सकती थी कि हमारे सपनों का चाइनिज बॉल में बदलना समय की सबसे प्रगतिशील और मौजूँ कार्रवाई है। क्या पता!